Research Paper | Education | E-ISSN No : 2454-9916 | Volume : 9 | Issue : 8 | August 2023

समकालीन हिन्दी उपन्यास में शरद सिंह

Dr. G. Sugida

Assistant Professor, Department of Hindi, Nirmala College, Muvattupuzha, Kerala

समकालीनता से अभिप्राय

समकालीनता से अभिप्राय "समय के साथ या उस काल चक्र के साथ चलना जो वर्तमान की देन हो ।" "सम अर्थात् एक समान" के समय में लिखी गई कृति समसामयिक कहलाती है। समकालीनता एक वाद के रूप में समाने नहीं आई बल्कि समकालीनता ने सभी पक्षों की विभाजियता को मिटाने की कोशिश की। समग्रता में विश्वास और समता की लीक पर चलना ही समकालीनता से अभिप्राय माना जाता है। आधुनिकता समकालीनता से पहले अपने प्रत्यक्ष रूप में आई। आधुनिकता का स्पष्ट रूप केन्द्रियता की पक्षधर थी। किन्तु समकालीनता का आर्विभाव जब हुआ तब समकालीनता ने विकेन्द्रियता पर बल दिया।

स्पष्ट है कि कोई भी संपूर्ण रचना उस काल क्रम के अनुसार समकालीन बनती है। "अरुण कमल" समकालीनता को इस तथ्य से पेश करते हैं कि ""केवल यही एक तथ्य कि किसी भी कृति की रचना एक चुने हुए काल–क्षण में ही संभव है सिद्ध करता है कि प्रत्येक रचना अपने काल से बद्ध है। यह उसकी समकालीनता है और यह समकालीनता उस रचना में व्यक्त उस काल के जीवन का अनुठापन है जो मनुष्य के जीवन में उसके पहले कभी प्रगट ही नहीं हुआ था।""1

समकालीनता में कई प्रश्न उभर कर आते हैं। अनेक समस्याएं समकालीनता के साथ जुडी हुई हैं। इन समस्याओं को साथ ले कर ही समकालीनता आगे बढती है। परम्परा का विद्रोह समकालीनता में देखने को मिलता है, लेकिन इसमें परम्परा का नकारात्मक पक्ष नहीं है। जीवन के प्रति आस्था और रूढियों के प्रति विद्रोह भी समकालीनता का प्रमुख स्वर है डॉ. उभर कर आता है। जॉ. उषा सिन्हा समकालीनता के रूप को स्पष्ट करती हुई लिखती हैं कि "समकालीनता का तात्पर्य किसी भी काल विशेष में मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों और उलझनों का मात्र चित्रण ही नहीं करता बल्कि उन स्थितियों और समस्याओं के कारणों को समझकर विषम परिस्थितियों में भी उसका सामना करने का विवेक उत्पन्न करना है।"1

समकालीनता के सामने कई समस्याएं हैं जैसे सत्ताधारी शक्तियों का आंतरिक दर्प, भोग की प्रवृत्तियाँ और असत्य सुभाषण, कथनी और करनी में अंतर यह सब समस्याएँ आम आदमी को भी झकझोर देती हैं। समकालीनता का मुख्य लक्ष्य इन नकली मुखौटों को उखाड फैंकना है। समकालीनता का प्रमुख कर्तव्य अपने चारों ओर फैली मूल्यहीनता को तोड उसका सही आकलन करना और काल की समस्याओं का डट कर मुकाबला करना है।

समकालीनता व्यक्ति को स्वतंत्र रखने के पक्ष में है। व्यक्ति के किसी भी विचार को केन्द्रियता प्रदान कर उसकी सीमा समकालीनता निर्धारित नहीं करती है। हर विचार उसके लिए स्वतंत्र है, वह किसी भी विषय पर कुछ भी लिखा या बोल सकता है। आधुनिकता ने जहाँ हर एक विचार की केन्द्रियता प्रदान की थी, वहीं समकालीनता ने उस विचार को विकेन्द्रित रूप द्योषित कर दिया। चाहे वो दलितों पर किया विचार हो या स्त्री पर किया कोई संवाद।

समकालीनता की संस्कृति या संस्कार कुछ भी नए नहीं है। परम्परागत संस्कृति को नाया रूप देने की कोशिश ज़रूर हुई है किंतु संस्कृति की धरातल वही पुरानी है। वर्तमान अतीत से जुडा हुआ है। अतीत के बिना वर्तमान की ज़मीन कभी पक्की नहीं की जा सकती। उसी प्रकार परंपरागत संस्कार कभी समकालीनता के आडे नहीं आए। समकालीनता इन संस्कारों को साथ लेकर आगे बढी है। प्रत्येक नए में परंपरा की वंशानुगत गोत्रता उपस्थित रहती है, जो पीढी दर पीढी चलती है। परंपरा के रचनात्मक द्वंद्व की भूमिका में ही समकलीनता न केवल अपने वर्तमान में अपेक्षित अर्थ पाती है। बल्कि भविष्य की संभाव्यता को भी खोजती रहती है।
समकालीन चिंतन किसी एक देश की अपनी संपत्ति नहीं। यह पूरे यूरोप–एशिया और पूर्वी देशों की चिंता का परिणाम है। समकालीनता अपने में कई चिंताओं को बताए हुए हैं। इसमें ऐसे कई प्रश्न हैं जो पढने या लिखने वालों को सोचने पर मज़बूर कर देते हैं। समकालीनता कई अस्वीकारों को लेकर सामने आयी है, इसमें निषेध की भावना भी समाई हुई है। इस समकालीनता के चिंतनों में सर्वप्रथम ईश्वर का निषेध मिलता है। दो भयंकर विश्वयुद्धों के बाद हुए विनाश ने ईश्वर की मृत्यु पर विश्वास का मोहर लगा दिया। यह समकालीनता की प्रमुख चिंताओं में से एक मानी जाती है।

दूसरी समस्या या दूसरे चिंतन का आधार मानव जन्म का अस्वीकार है। पाश्चात्य चिंतक कामू के अनुसार "जन्म और जीवन मृत्यु न मिलने पर एक शेष रहा चुका विकल्प है। ऐसे में जीवन महज एक आदत बन जाता है, मानव की बेशुमार गल्त आदतों जैसी।

मृत्यु–संत्रास की चिंता भी समकालीनता की प्रमुख समस्या के रूप में सामने आई है। विसंगति बोध या व्यर्थता का दर्शन भी इस समकालीनता की एक प्रमुख चिंता है। समकालीनता ने अलगाव की भीष्ण चिंतन को भी अपने साथ समाहित किया है। समकालीनता ने अलगाव की स्थिति को हर संबंधों में दिखाया है। मानवीय रिश्तों–व्यवहारों को इस अलगाव रूपी कुष्ठ ने कई धावों से घिनौना बना दिया है। विद्रोह का स्वर, वेदना, अमानवीकरण आदि चिंतन समकालीन के साथ – जुडी है। अस्तित्ववाद भी इसके पश्चात् प्रारूप में आया। समकालीनता में अनेक समस्यायों का अर्विभाव माना जाता है। ऐसे कई प्रश्न उभरे जो व्यक्ति को अपनी पहचान करा सके। समकालीन का रूप व्यापक है। समग्रता इसकी पहचान मानी जाती है। किसी एक विषय पर चिंता इस समकालीनता का उद्देश्य नहीं है। भिन्न–भिन्न विषयों को केन्द्र में रखना और उस पर विचार करना ही समकालीनता की विशेषता है।

समकालीनता सभी विषयों के साथ लेकर आगे बढती है, चाहे वह पारिस्थितिक सजगता हो या स्त्री या दलित पर की गई कोई खास सोच। समकालीनता की खासियत ही "समग्रता" में समाई हुई है और उसकी यही खासियत समकालीनता को समय के साथ चलने पर मज़बूर करती है। इसलिए तो हरिशंकर परसाई ने कहा होगा कि ""जो अपने समय का नहीं वह दूसरे के समय का क्या होगा। सर्वकालिक वही ही सकता है जो समकालीन हो।""1

आधुनिक चिंतन से जुडे उपन्यास

आधुनिक चिंतन का प्रत्यक्ष रूप वैज्ञानिक विकास के पश्चात् सामने आया। आधुनिकता स्पष्ट रूप से विज्ञान की ही देन मानी जाती है। उसे मुख्य रूप से औद्योगिक तथा आर्थिक विकास से अथवा वैज्ञानिकी तथा तकनीकी विकास से जोडा जा सकता है। आधुनिक चिंतन परंपरा का अनुकरण नहीं। डा. उषा सिन्हा के शब्दों में, ""आधुनिकता परम्परा का अनुकरण न होकर एक खंडित क्रिया अथवा घटना है।""1

आधुनिकता का स्वरूप निरन्तर बदलता रहता है क्योंकि इसमें युवा पीढी व पुरानी पीढी की मान्यताओं और मूल्यों को तोडने की कोशिश करती है। कल का आधुनिक जीवन–बोध आज के संदर्भ में निरर्थक हो जाता है। अतः आधुनिकता निरन्तर परिवर्तशील है। आधुनिकता का सीधा संबंध माव जीवन से जुडा है। आधुनिकता की नवीनता मानव जीवन में भी नई–नई सोच की अवधारणा करती है। लेकिन नवीनता अधुनिकता का पर्याय न होकर उसका सहयोगी है। डॉ. उषा सिन्हा आधुनिकता के स्वरूप को स्पष्ट करती हुई लिखती है कि "प्राचीन समृद्धि और सारग्रहिणी तत्व को स्वीकार करते हुए वर्तमान और भविष्य के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध ही आधुनिकता की पहचान है।"2

आधुनिक विचारों का सीधा प्रभाव साहित्य में देखने व परखने को मिलता है। उपन्यास जो कि एक सशक्त विधा मानी जाती है, में आधुनिक चिंतनों से जुडे उपन्यासों की चर्चा देखने को मिलती है। 1960 के बाद हिन्दी साहित्य आधुनिक चिंतन से प्रभावित हुआ। आधुनिकता "केन्द्रियता के घेरे में व्याप्त था। किसी भी विषय का केन्द्रिकरण आधुनिकता की विशेषता मानी जाती है। लेकिन जब समकालीनता ने साहित्य में कदम रखा तो विकेन्द्रिकरण का दौर शुरु हुआ।

स्पष्ट रूप से कहा जाए तो आधुनिकता ने जब उपन्यास में कदम रखा तो व्यक्ति की कुंठा, उसके अजनबीपन, अकेलेपन, वैयक्तिक आत्मनिर्वासन की स्थिति को सबके सामने पेश कर दिया। नगरीकरण व मशीनीकरण ने मानव जीवन को जटिल बना दिया। आधुनिक उपन्यास इन सब मुद्धों को साथ लेकर लिखा गया। हिन्दी उपन्यास में आधुनिकता का आरंभ प्रेमचंद के गोदान से ही माना जा सकता है। आधुनिकी प्रभाव के कारण ही गाँवों के भोले–भाले विज्ञानों को अंत में मज़दूर बनना पडा।

अज्ञेय वृत "अपने–अपने अजनबी" में भी नितांत आधुनिकता के दर्शन कर सकते हैं। इसमें जीवन और मृत्यु से संबंधित चिंतन आधुनिक है। डॉ. उषा सिन्हा कहती हैं कि ""आज जीवन और मृत्यु की परिभाषा समय बदलने के साथ–साथ बदल गयी है। जीवन की समस्त विसंगतियाँ मृत्यु की वास्तविकता में विलीन हो जाती हैं। इसलिए मृत्यु ही सत्य है।""1

मोहन राकेश द्वारा रचित न आने वाला कल" इसी आधुनिकता की त्रासदी का बयान करता है। आधुनिक मनुष्य अकेला न होकर भी, अकेलेपन का शिकार है। यही उसकी विडम्बना है। दूसरी ओर डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार भीड में अकेलेपन का एहसास सबका एक सा नहीं होता। कुछ लोग इसे हल्के मनोरंजन के साथ जीने की जदीजहद् करते हैं। किन्तु आधुनिकता ने अकेलेपन को भेंट के रूप में मानव को दिया है जिसने इसे स्वीकारने के लिए विवश किया है।

शिवप्रसाद सिंह द्वारा रचित "अलग–अलग वैतरणी में भी आधुनिक भावबोध की पहचान, नयी पुरानी पीढी के मूल्यों के बीच टकराहट और जातियों के बीच आपसी मतभेद को दिखाया गया है। आधुनिकता ने मानव को अपने सब मूल्यों से निर्वासित कर दिया है जिसकी झलक इस उपन्यास में देखने को मिलती है।

Copyright© 2023, IERJ. This open-access article is published under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License which permits Share (copy and redistribute the material in any medium or format) and Adapt (remix, transform, and build upon the material) under the Attribution-NonCommercial terms.

निर्मल वर्मा का उपन्यास "वे दिन", महेन्द्र भल्ला का उपन्यास "एक पति के नोट्स" उषा प्रियंवदा का उपन्यास "रुकोगी नहीं राधिका", ममता कालिया कृत बेघर" कृष्णा सोबती द्वारा रचित सूरज मुखी "अंधेरे के" और जगदंबा प्रसाद दीक्षित का "मुर्दाघर" यह सब उपन्यास आधुनिकता की देन को स्पष्ट करने वाले हैं।

आधुनिकता ने उपन्यास में मानव जीवन की समस्त विडम्बनाओं को दर्शाया है। उसकी कुंठा, वेदना, त्रास, अकेलापन, अजनबीप, निर्वासन की पीडा, स्वत्व की पहचान यह सब उसके लिए आधुनिकता की भेंट है। जो उसे न चाहते हुए भी स्वीकार करनी पडती है। चन्द्रकांत वादिवडेकर के अनुसार ""अपने तीव्र संवेदनाओं के बंदी ये चरित्र (वस्तुतः चरित्र के लिए जो दृढता अपेक्षित होती है) वह इनमें अंश भर भी नहीं होती। एकांत द्वीप की तरह एक–दूसरे और असंपृक्त होते हैं। ये बाहर से अमुखी लगते हैं। जब बोलते हैं तब लगता है कि कही तल तक दबी हुई चीज़ खींच–खींचकर बाहर निकालने का असल श्रम ये कर रहे हैं।""1

समकालीन उपन्यास की प्रवृत्तियाँ

समकालीनता समय के साथ चलने की मांग है। समकालीनता के अर्थ को स्पष्ट करने हुए अरुण कमल कहते है कि ""एक श्रेष्ठ रचना उन तत्वों को पकडती है जो सर्वाधिक नए और अनूठे है। जो रचना जितनी तीव्रता और जितने विस्तार से इस नए पन को व्यक्त करती है वह उतनी ही श्रेष्ठ होती है और उतनी ही अधिक समकालीन।""1 स्पष्ट रूप से कहा जाए तो समकालीनता नए पन को विस्तारित करती है। उसमें समय के साथ चलने की, मांग करने की क्षमता होती है। यह मांग समय के साथ नहीं बल्कि उसके आगे तक की, सोचने की मांग है। इसमें मनष्य के समकालीनता पर विचार करते हुए कवि रधुवीर सहाय लिखते हैं कि मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है। भविष्य के प्रति, नियति के प्रति नहीं।

समकालीनता, उपन्यासों में प्रखर रूप से उजागर होती है। उपन्यास, समकालीनता की सभी प्रवृत्तियों की साक्षी है। उपन्यास, समकालीनता के सभी रूपों को प्रभावित कर आगे बढता है। समकालीन उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, पारिस्थितिक सजगता, सांप्रदायिकता का प्रतिरोध ग्रामीण विमर्श, राजनीतिक संदर्भ, विदेशी परिवेश, आंचलिकता, भूमंडलीकरण और उपभोग संस्कृति।

आधुनिकता ने जहाँ विचारों को केन्द्रित बना दिया था, वहीं समकालीनता ने विचारों को विकेन्द्रित कर दिया। हर विषय पर, हर व्यक्ति को विचार करने का अधिकार मिला।

दलित विमर्श

दलित विमर्श में दलितों की समस्याओं को उजागर किया गया। गोपाल राय के अनुसार "दलित पद निर्विवाद एवं में परिभाषित नहीं है, पर सामान्यतः पर परंपरागत वर्ण–व्यवस्था में शुद्र और पंचम वर्ण के अन्तर्गत आने वाले समुदाय को, जो सवर्णों द्वारा अस्पृश्य माना जाता रहा है, दलित कहा जाता है।"2 दलित विमर्श भी समकालीन उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्ति मानी जाती है। इसके अन्तर्गत नागार्जुन का बलचनामा और वरुण के बेटे, देवेन्द्र सत्यार्थी का रथ के पहिए, फणीश्वरनाथ रेणु का मैला आंचल, उदय शंकर भट्ट का सागर, लहरें और मनुष्य, रागेय राघव का कब तक पुकारू, जगदीशचन्द्र का धरती धन न अपना और नरक कुंड में बास, शैलेष मटियानी कृत सर्पगंधा, शिवप्रसाद सिंह का शैलुष, मैत्रेय पुष्पा की अल्मा कबूतरी, अमृतलाल नागर का "नच्यो बहुत गोपाल, गिरिराज किशोर का परिशिष्ट जयप्रकाश कर्दम का द्दप्पर, मदन दीक्षित का मोरी की ईंट तथा तेजिन्दर का उस शहर तक के कुछ प्रसिद्ध उपन्यास शामिल हैं। यह सब उपन्यास अलग–अलग कोनों से एक ही लक्ष्य तक पहूँचते हुए दिखा ी देते हैं और वह लक्ष्य है, दलित वर्ग की मुक्ति। इनमें से कुछ उपन्यास काल्पनिकता की कहानी गढते हैं तो कुछ उपन्यास सत्य को उद्घाटित करने वाले हैं। अपने निजी जीवन में भी ये उपन्यासकार किसी न किसी रूप में दलित संवेदना के काफी नजदीक है।

स्त्री विमर्श

समकालीनता की अगली प्रमुख प्रवृत्ति स्त्री विमर्श हो सकती हैं। क्योंकि ऐसा कोई समाज नहीं बना जहाँ स्त्री न हो और जहाँ स्त्री है तो उस पर ज़रूरत से ज्यादा अन्याय भी हुए होंगें। इस समाज में नारी के ऊपर होने वालों अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठा उसके अपने अधिकारों के लिए जागृत करना ही स्त्री विमर्श का लक्ष्य है। नारी विमर्श का ही दूसरा रूप नारी आन्दोलन ने ले लिया है। नारी वाद हो या नारी आन्दोलन इन सब का मात्र, केवल एक ही लक्ष्य है, नारी–मुक्ति। डॉ. अमर ज्योति के अनुसार "नारीवाद का लक्ष्य नारी को द्वितीय दर्जे के नागरिक से "सहमानव" रूप में स्थापित करना है। जब तक इस लक्ष्य को सामने रखकर आन्दोलन को सही दिशा नहीं दी जाएगी नारीवादी आन्दोलन वास्तव में अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाएगा।"1 स्त्री विमर्श का दायरा बहुत व्यापक है। इनमें प्रमुख आने वाले उपन्यास उषा प्रियंवदा का पचपन खंभे लाल दीवारे और रुकोगी नहीं राधिका, मुदुला गर्ग की उसके हिस्से की धूप, मन्नू भंडारी का आपका बंटी, राजी सेठ का तत–सम, नासिरा शर्मा की शाल्मली, मेहरुन्निसा परवेज की आखों की दहलीज और कोरजा, कृष्णा सोबती का मित्रों मरजानी, प्रभा खेतान का छिन्नमस्ता, चित्रा मुद्गल की एक ज़मीन अपनी और आवाँ और सुरेन्द्र वर्मा की "मुझे चांद चाहिए" आदि है। ये सब उपन्यास स्त्री–विमर्श पर लिखे गए हैं। स्त्री विमर्श का प्रत्यक्ष रूप इन उपन्यासों के माध्यम से उजागर होता है।

पारिस्थितिक सजगता

समकालीन उपन्यासों की प्रमुख–प्रवृति पारिस्थितिक सजगता है। इस पर भी कई उपन्यास लिखे गए हैं। प्रकृति का दोहन, हमारी प्राकृतिक संपदा की हानि इस विषय पर लिखा उपन्यास पारिस्थितिक सजगता की मांग करता है। अपनी परिस्थिति के लिए कुछ विचार प्राकृतिक विनाश जो मनुष्यों द्वारा हो रहा है, उस पर लिखा उपन्यास ही इन अत्याचारों के खिलाफ एक आवाज़ है। इसमें आने वाले उपन्यास वीरेन्द्र जैन का डूब, नासिरा शर्मा का कुइयांजान, "सजीव की धार और सावधान नीचे आग है, सुभाष पंत का "पहाड चोर", मृदुला गर्ग का कठगुलाब शामिल हैं।

सांप्रदायिकता का प्रतिरोध भी समकालीन उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्ति मानी जाती है। भारत में अनेक जातियाँ हैं लेकिन कुछ एक जाति अपनी संस्कृति को भुला कर एक दूसरे को नीचा दिखाने की होड में शामिल है। इसी से सांप्रदायिकता का विकास होता है। सांप्रदायिकता एक ऐसा विष है जो पूरे देश में धीरे–धीरे फैल रहा है। इसमें देवेन्द्र सत्यार्थी का कठपुतली, यशपाल का झूठा सच, कमलेश्वर का लौटे हुए मुसाफिर, राही मासूम रजा का आधा गांव, नासिरा शर्मा का जिन्दा मुहावरे, अब्दुल बिस्मिल्लाह का झीनी झीनी बीनी चदरिया और भगवान सिंह का उन्माद उपन्यास शामिल है।

राजनीतिक संदर्भ

राजनीतिक संदर्भ भी समकालीन उपन्यासों की प्रवृत्ति है। देश की गंदली राजनीति का चित्र उपन्यासों में खींचा गया है। गोपाल राय लिखते हैं कि "आजादी के बाद के उपन्यासों में स्वाधीनता संग्राम के सक्रिय रूप ग्रहण करने से लेकर बीसवीं सदी के अंत तक के व्यापक राजनीतिक संदर्भ का बहुत विश्वासनीय अंकन हुआ है। यह चित्रण देश की ईमानदार जनता की सोच और संवेदना का प्रतिनिधित्व करने के कारण भविष्य में ऐतिहासिक महत्व का होगा, इसमें दो मत नहीं हो सकते।"1

राजनीतिक संदर्भ के अर्न्तगत राही मासूम रजा का आधा गाँव, राजकृष्ण मिश्र का दारुल सफा, श्रीलाल शुक्ल का विश्रामपुर का संत अमृतलाल नागर का बूंद और समुद्र और शैलेष मटियानी का सर्पगंधा आते है। राही के उपन्यास आधा गाँव के लिए चंद्रकान्त वादिवेडकर लिखते है कि "ज़िन्दगी के जिस रवैये को उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह विशेष रूप में अप्रतिम नही है क्योंकि हिन्दू–मुसलमानों के वर्षों के भावात्मक संबंधों की राजनीतिक खतरनाक परिणति का चित्रण वैचारिक धरातल पर हिन्दी साहित्य के लिए नया नही है, न भावात्मक स्तर पर ही।""1

विदेशी परिवेश

विदेशी परिवेश में लिखा उपन्यास या फिर विदेशी परिवेश को आधार बना कर लिखा उपन्यास समकालीन उपन्यास की एक नई और अलग प्रवृत्ति मानी जाती है। इसमें निर्मल वर्मा की "वे दिन" प्रथम स्थान पर मानी जाती है। महेन्द्र भल्ला के दूसरी तरफ और दो देश और तीसरी उदासी, नासिरा शर्मा का सात नदियां एक समुन्दर और प्रभा खेतान की आओ पेपे घर चले आदि प्रमुख उपन्यास है। गोपाल राय लिखते है कि "यह वैश्विक स्तर पर तूफानी जीवन–संघर्ष, संबंधों के व्यवसायीकरण भोगवादी मानसिकता, नस्लवादी मनोवृत्ति, पारिवारिक विघटन, उच्चवर्गीय जीवन के अन्तरविरोध बाहर और भीतर की ज़िन्दगी के तनाव, सम्बधहीनता, नकली ज़िन्दगी, पति–पत्नी की टकराहट में टूटते–पिसते बच्चे, भोगविलास के पीछे अंधी दौड, आर्थिक समृद्धि के बीच सम्बधहीनता और संवेदनशून्यता की पीडा का, प्रमाणिक अनुभव और गहरी अनुभूति के साथ, अंकन करने वाले उपन्यास है।"2

आँचलिकता

आंचलिकता समकालीन उपन्यास की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति मानी जाती है। किसी एक अंचल को केन्द्र में रखकर लिखा उपन्यास आंचलिक उपन्यास कहलाता है। आंचलिक उपन्यास को एक आन्दोलन का रूप दिया गया, जिसका सपना था, बंजर पृथ्वी को हरा–भरा किया जाए। चन्द्रकान्त वादिवडेक्कर के अनुसार ""आंचलिक उपन्यास उस प्रवृत्ति की उपज है, जिसमें लेखक का ध्यान व्यक्तित्व से परिवेश की ओर, उंचाई या गहराई से समतल की ओर, विशिष्ट से सामान्य की ओर, व्यक्ति से सामूहिकता की ओर प्रायः रहता है।""1

समकालीन हिन्दी उपन्यास में गाँव केन्द्रित ऐसे कई उपन्यास है जो अंचल विशेषताएं प्रकट करते हैं। इसमें वीरेन्द्र जैन का डूब, विवेकी राय का सोना–माटी, मैत्रेय पुष्पा का अल्मा कबूतरी, श्री प्रकाश मिश्र का जहाँ बांस फूलते हैं, भगवानदास का काला पहाड, संजीव का जंगल जहाँ शुरु होता है, आदि प्रमुख है। समकालीन आंचलिक उपन्यास समय की मांग की पूर्ति करते हैं।

भूमंडलीकरण

समकालीन हिन्दी उपन्यास की अगली प्रमुख प्रवृत्ति भूमंडलीकरण ही है। इस प्रवृत्ति ने हिन्दी उपन्यास ही नहीं बल्कि हर एक विधा में अपनी छाप छोडी है। समाज का ऐसा कोई वर्ग बाकी नहीं बचा है, जिसमें भूमंडलीकरण की बात न छिडी हो। आखिर भूमंडलीकरण की अवधारणा क्या है? इस भूमंडलीकरण ने पूरी दुनिया को एक बाज़ार बना दिया है। इसकी प्रेरक–प्रभावक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हैं, जो सारी धरती को अपना बाज़ार मानती हैं। यह अवधारणा ऊपर से मोहक व आकर्षक है, लेकिन इस की चपेट में फंसा एक व्यक्ति कभी, इससे बाहर नहीं आ पाता, वह और अधिक घंसता चला जाता है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया का आरंभ उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के साथ ही हुआ। इस भूमंडलीकरण के चलते जहाँ एक ओर रोज़गार की दरें बढी हैं, लोगों की सुविधाएँ अधिक हुई हैं वही दूसरी ओर मानव की मानवीयता का भी नाश हो रहा है। मानव से उसकी संस्कृति एवं उसकी सभ्यता छीन गई हैं । उसने मानव से संस्कृति के साथ–साथ भाषाओं की सत्यता पर भी सवालिया निशान खडा कर दिया है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न खतरों से सांस्कृतिक अस्मिता और भाषाओं का अस्तित्व बचाए रखना आवश्यक है।

भूमंडलीकरण की इसी अवस्था को स्पष्ट करती हुई प्रभा खेतान लिखती है कि ""जिस प्रकार हम प्रकृति को वश में नहीं कर पाते उसी तरह भूमंडलीकरण की उद्दाम शक्ति को भी पलटना संभव नहीं। शायद इसीलिए आज प्रत्येक देश की सरकार और वहाँ के अर्थ शास्त्रियों तथा मुख्यधारा की मीडिया ने भूमंडलीकरण को स्वीकार लिया है।"1

भूमंडलीकरण से जुडे हिन्दी उपन्यासों की संख्या दर–ब–दर बढती जा रही है। क्योंकि समाज की सबसे विगत स्थिति भी यही है। ममता कालिया का "दौड" नामक उपन्यास इस की यथार्थता को कुछ हद तक पेश करने में सक्षम रहा है। रवीन्द्र का सबसे प्रभावित उपन्यास ग्लोबल गाँव का देवता है, इसमें भूमंडलीकरण को बडे पैमाने में दिखाने की कोशिश हुई है। अलका सरावगी का कालिकथा बाई पास, उदय प्रकाश का पीली छतरी वाली लड़की, अलका सरावगी का एक ब्रेक के बाद, सुषमा

जगमोहन का ज़िन्दगी ई.मेल, सुभाष पंत का पहाड चोर, मधु कॉकरिया का सेज पर संस्कृत, नासिरा शर्मा का कुइयाँजान और मैत्रेयी पुष्पा का विजन और वीरेन्द्र जैन का डूब प्रमुख है। इन उपन्यासों में भूमंडलीकरण के निशान साफ–साफ नज़र आते हैं।

गांधी चिंतन के उपन्यास

समकालीन हिन्दी उपन्यास में गाँधी चिंतन से प्रेरित उपन्यास भी बडे पैमाने पर लिखे गए। गाँधी विचार धारा से जुडे उपन्यासों की संख्या बढ रही है। भूमंडलीकरण के इस दौर में गाँधी विचार का पक्ष लिया जा रहा है। गाँधी विचार–धारा ही वर्तमान समाज की समस्याओं का हल निकाल सकती है। अहिंसा का मार्ग ही गांधी चिंतन धारा का अर्थ नहीं है, बल्कि यह धारा व्यापक रूप में हर क्षेत्र से जुडी है। इसकी पहचान ही गांधी विमर्श के तहत की जा रही है। वर्तमान का गांधी विमर्श राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक पहलुओं से जुडा है। हरिजनों, दलितों आदिवासियों से जुडा गांधी विमर्श एक बडे पैमाने पर अपनी छाप छोड रहा है। गांधी विमर्श के ऊपर लिखे उपन्यासों में प्रमुख उपन्यास पहला गिरमिटिया माना जाता है। गिरिराज किशोर गांधी के निजी जीवन पर प्रकाश डालने की कोशिश करते हैं। उपन्यास का गांधी इतिहास का गांधी होते हुए भी गिरिराज किशोर के विजन का गांधी है, जो भारत का "पहला गिरमिटिया है। अन्य गांधी विमर्श से जुडे उपन्यास उदय प्रकाश का पीली छत्तरी वाली लडकी, श्रीलाल शुक्ल का विश्रामपुर का संत, अल्का सरावगी का कलिकथा बाई पास, इन्हीं हथियारों से अमरकांत का विवेकी राय का सोना–माटी, वीरेन्द्र जैन का डूब और पार, इन्द्रनाथ सिंह का आखिरी कलाम, चित्रा मुद्गल का आबां, कामतानाथ का कालकथा प्रमुख हैं।

आदिवासी विमर्श

आदिवासी विमर्श भी समकालीन उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्ति है। जो वर्ग समाज से कट एक अलग दायरे में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी संस्कृति, उनकी सभ्यता उनकी भाषा सब समाज से अभिन्न मानी जाती है, इन्हें ही आदिवासी वर्ग के नाम से जाना जाता है। इस लोगों की परंपरा आज भी अपने रीति–रिवाज़ों से जुडी आगे बढ रही है। शिक्षा की कमी, एक उच्च दर्जा पाने की लालसा, अपने जीवन को सुधारने की मांग इनमें नहीं थी, लेकिन आदिवासी विमर्श के आने से इन्हे अपने अधिकारों की पहचान हुई, शिक्षा का अर्थ समझ में आया। आज भी ऐसी प्रजातियां हैं जो जंगलों में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, समाज से जुडना तो दूर, समाज का अर्थ तक भी यह नहीं जानते। आदिवासी विमर्श ने इन लोगों को एक नई पहचान दिलाने का कार्य किया है। मध्य प्रदेश के गुना, शिवपुरी, मुरैना और राजस्थान के बारा शाहपुर क्षेत्र के जंगलों में बसी सहरिया जनजाति के वंशनाश की खबर आई है। आदिवासी विमर्श ही इस पर काम कर रहा है। इससे जुडे प्रमुख उपन्यास, तेजिन्दर का" काल पादरी शिवप्रसाद सिंह का शैलूष, मैत्रेयी पुष्पा का अल्मा कबूतरी, संजीव का घार, मनमोहन पाठक का "गगन घटा घहरानी, रणेन्द्र का ग्लोबल गांव का देवता, भगवान दास मोरवाल का रेत और काला पहाड, शरद सिंह का पिछले पन्ने की औरतें हैं।

प्रवासी जीवन पर भी उपन्यास लिखे गए। इन उपन्यासों में प्रवासी जीवन की विड़म्बनाओं, उनके अकेलेपन और अपनों से दूर रहने की छटपटाहट का चित्रण है। रवीन्द्र कालिया का ए.बी.सी. डी इसमें प्रमुख उपन्यास है। इसमें दो देशों की संस्कृति की मानसिकता का भी चित्रण है। भारतीयता की पहचान, अपनी देश की मिट्टी से प्यार की भावना, यह एहसास प्रवासी भारतीय के अन्दर ही हो सकते हैं।

समकालीन उपन्यासों की यह प्रवृत्तियाँ उपन्यास के क्षेत्र को विस्तृत और व्यापक बनाती है। समकालीन उपन्यासों की इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में कई विचार उजागर हुए।

स्त्रीवादी उपन्यास

समकालीनता में जब साहित्य में कदम रखा था तो हर एक विषय की चर्चा बखूबी होने लगी। चाहे वह पारिस्थितिक सजगता की चर्चा हो या फिर दलित चेतना की । इन्हीं विमर्शों में एक सशक्त विमर्श स्त्री विमर्श भी है। जिसे शायद पाश्चात्य साहित्य ने बहुत पहले अपना लिया था। हिन्दी साहित्य तक आते–आते स्त्री विमर्श ने अपना विकराल व भव्य रूप बना लिया। आज हर क्षेत्र में स्त्री विमर्श एक गहरी छाप छोडे हुए है। हर स्त्री को यह विमर्श अपने जीवन के विमर्श सा जान पडता है।

हिन्दी साहित्य की हर विधा ने स्त्री–विमर्श को अपने गले लगाया है। इसमें प्रमुख रूप से उपन्यास की चर्चा करना बेहतर होगा। क्योंकि उपन्यास में इस विमर्श को एक बडा लंबा कैनवास मिला है। "उपन्यास" में स्त्री विमर्श की जीती–जागती तस्वीर देखने को मिलती है। इस विमर्श पर कई उपन्यास लिखे गए। जिसमें स्त्री की छटपटाहट, उसकी वेबसी और साथ ही साथ उसके प्रतिरोध का स्वर भी उजागर होता हैं ।

आज़ादी मिलने के बाद स्त्री की स्थिति में बदलाव आया और यहीं से उसकी मुक्ति की जदोजहद शुडिग्री हुई। इस पर गोपाल राय लिखते हैं कि ""आज़ादी मिलने और विशेषकर भारतीय संविधान लागू होने के बाद भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति में जबरदस्त बदलाव आ गया। इसे नारी संबंधी नवजागरण का दूसरा चरण कहा जा सकता है।""1 स्त्री ने जैसे–जैसे शिक्षा की ओर अपना कदम बढाया, वैसे–वैसे उसे अपने अधिकारों की जानकारी हुई। उपन्यासों में स्त्री–विमर्श ने खूब ज़ोर पकडा। प्रेमचंद के उपन्यासों से ही स्त्रीवादी उपन्यासों को स्थान मिला। स्त्री की स्थिति की ओर अवगत कराया गया उस का सही समाधान खोजने की चाह हर उपन्यासकार की रही है। प्रेमचंद के बाद यशपाल के झूठा सच और देशद्रोही में स्त्री पात्रों की विवशता को दिखाया गया है। देशद्रोही उपन्यास में स्त्री पात्रों के काम सबंधों के उन्मुक्त रूप को दिखाया है। इस उपन्यास ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मात्र पुरुष ही काम के पूजारक नहीं होते बल्कि स्त्री भी इस काम की पूर्ति करना चाहती है। आज स्त्री की इच्छा को खुल कर व्यक्त किया जा रहा है।

स्त्री के विभिन्न रूपों की चर्चा स्त्रीवादी उपन्यासों में हुई है। उषा प्रियंवदा की "पचपन खंभे लाल दीवारे" में एक अविवाहित रह जाने वाली मध्यवर्गीय लडकी की कहानी को चित्रित किया गया है। वही इनके अन्य उपन्यास रुकोगी नहीं राधिका में आधुनिक नारी के भटकाव की कहानी है। आधुनिक नारी परंपरागत मूल्यों को तोड उससे बाहर आना चाहती है। इसी सोच पर इस उपन्यास की रचना हुई है। दाम्पत्य जीवन की छटपटाहट पर भी उपन्यास लिखे गए। इसमें मृदुला गर्ग की "उसके हिस्से की धूप प्रमुख मायने रखती है। इसलिए लिखा जा सकता है कि सभी स्थितियों में अत्याचार एवं शोषण की शिकार सभी स्त्रियां मुक्ति का प्रयास कर पाने में भले ही सक्षम न हो किंतु नारी जाति का एक बहुत बडा वर्ग दाम्पत्य शोषण एवं विवाहेतर पारिवारिक अन्याय एवं अत्याचार के प्रति अपना विरोध दर्ज कर रही है।

नासिरा शर्मा की "शाल्मली" नामक उपन्यास भी आधुनिक परिस्थितियों में पति–पत्नी की समस्या को एक नए कोण से उजागर करता है। शाल्मली स्वयं कहती है कि ""औरतों का दुख–सुख पूछने, उनके हृदय की थाह लेने में मर्द अपना अपमान जो समझता है, वह तो पूर्ण–संतुष्ट इसी एक बात से रहता है कि उसके कारण किसी औरत को सौभाग्यवती बनने का अवसर मिला। उसके अस्तित्व से किसी औरत को क्या शिकायत हो सकती है। उसकी शारीरिक मांगे पूरी हो ही जाती है। कपडा, खाना, रहना और संतान, यदि इसमें कमी हो, तो फिर उनका अपना भाग्य है, यह सोच मर्द की होती है औरतों के बारे में।""1

नासिरा शर्मा की ठीकरे की मंगनी भी स्त्री का हक ढूढने में सहायक उपन्यास है। वहाँ लेखिका स्त्री के अस्तित्व पर सवाल खडा करती है। लेखिका स्त्री के लिए अपने स्वयं का घर चाहती हैं। इसलिए पूछती भी हैं कि एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है। स्त्रीवादी उपन्यासों में एक प्रमुख उपन्यास है कृष्णा सोबती का "मित्रों मरजानी"। इसमें नारी संहिता की धाराओं को छिन्न–भिन्न कर देने की मांग है। जो कुछ हद तक सफल भी होते हुए दिखाई देते हैं। मैत्रेयी पुष्पा की अल्मा कबूतरी भी एक विशेष जाति की स्त्रियों की कथा को ब्यान करने वाला है। अल्मा नामक पात्र इस समाज से, अपने परिवेश से जूझती हुई दिखाई देती है।

स्त्रीवादी उपन्यासों में छिन्नमस्ता का नाम बडे ही गर्व से लिखा जाता है। छिन्नमस्ता की पात्र प्रिया औरत को समाज के इन गन्दे नियमों से लडने की प्रेरणा देती है। उसे औरत का रोना बिलकुल अच्छा नहीं लगता क्योंकि उसका मानना है कि आंसू औरत को कमज़ोर बना देते है। उसे सहानुभूति का पात्र बना देते हैं और सहानुभूति कभी प्यार नहीं ही सकती क्योंकि जब सहानुभूति खत्म हो जाएगी तब प्यार भी खत्म हो जाएगा। इसलिए प्रभा खेतान प्रिया के माध्यम से कहती है कि ""औरत कहाँ नहीं रोती? सडक पर झाडू लगाते हुए, खेतों में काम करने हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते हुए या फिर सारे भोग ऐश्य के बावजूद... पंलग पर रात–रात भ अकेले करवटें बदलते हुए... हज़ारों सालो से इनके ये आँसू बहाने बहते आ रहे हैं।""1 प्रभा खेतान के अन्य उपन्यास पीली आंधी, अपने–अपने चेहरे, आदि भी स्त्रीवादी उपन्यासों में प्रमुख माने जाते हैं। स्त्रीवादी उपन्यासों का अगला हस्ताक्षर चित्रा मुद्गल के "एक ज़मीन अपनी" और "आवां का है। इन दोनो ही उपन्यासों में स्त्री के अस्तित्व पर सवाल किया गया है। आवां में एक स्वालम्बी स्त्री की कहानी है। जिसका बचपन में बलात्कार हुआ था लेकिन वह रुकती नहीं जीवन में संघर्ष कर आगे बढने की लालसा उसमें है। एक ज़मीन अपनी में नायिका अपने अस्तित्व को खडा करने के लिए एक ज़मीन की तलाश करती है। ज़मीन पक्की व सुदृढ होनी चाहिए ताकि जीवन की मामूली संघर्षों से उसकी नींव न डगमगाए। चित्रा मुद्गल इन दोनों ही उपन्यासों में पात्रों को एक नई उर्जा देती हुई दिखाई देती हैं। एक ज़मीन अपनी की नायिका कहती है कि ""पुरुष से स्वतन्त्र होना है तो पहले उन्हें सिन्दूर पौछना होगा। बिछुए त्यागने होगें।""2

स्त्रीवादी उपन्यासों में सुरेन्द्र वर्मा का मुझे चांद चाहिए प्रमुख है । इस तरह स्त्रीवादी उपन्यासों की एक लंबी कतार है। इन सब उपन्यासों में लेखिकायें स्त्री के हक के लिए संघर्ष कर रही हैं। वे कतई पुरुष विरोधी नहीं बल्कि अपने दोयम दर्जे से निकल समानता की मांग ही स्त्रीवादी उपन्यासों का लक्ष्य रहा है।

शरद सिंह और उनका रचना संसार

रचनाकार की सही पहचान उसकी रचना ही है। रचना के द्वारा ही उसका समाज में एक स्थान बनता है। हिन्दी साहित्य में कई रचनाकारों ने हस्ताक्षर किए। उनके यह हस्ताक्षर आज भी हमारे सामने ज़िन्दा मिसाल कायम किए हुए हैं। इन्ही रचनाकारों में कुछ अतीत के हस्ताक्षर हैं तो कुछ वर्तमान के। लेकिन इन रचनाकारों को काल चक्र के हिसाब से आंका नहीं जा सकता क्योंकि इनमें कुछ रचनाकार ऐसे है जो अतीत के होते हुए भी वर्तमान में अपनी छाप छोडे हुए हैं। इनकी रचनाओं की यह श्रेष्ठता ही उन्हें अतीत से वर्तमान की दूरी को मिटा देती है। समकालीनता के इस परिप्रेक्ष्य में कई रचनाकारों का नाम गर्व से लिया जाता है। समकालीन परिदृश्य में यदि स्त्री विमर्श की चर्चा की जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। स्त्री विमर्श पर कई रचनाकारों ने अपनी कलम चलाई। इसमें एक प्रमुख रचनाकार का नाम भी सामने आता है, शरद सिंह।

शरद सिंह समकालीन रचनाकारों में प्रमुख गिनी जाती है। शरद सिंह का रचना संसार सीमित नहीं। स्त्री विमर्श के साथ–साथ ऐसे और भी कई क्षेत्र हैं जिस पर शरद सिंह ने लिखा है। उनके प्रमुख विचार तो स्त्री–विर्श ही माना जाता है पर आदिवासियों और लुप्त होती जनजाति को दूँढ उन पर लिखने की कोशिश करना, उन्हें सब रचनाकारों से श्रेष्ठ बना देता है। शरद सिंह ने जैन व सिख्खों की कथाएं भी लिखी हैं। विभिन्न आयामों पर खोज करना शरद सिंह के लिए एक नया ही अनुभव है। इनकी सबसे बडी खूबी यह है कि ये सत्य को उसी प्रकार पेश करती हैं जैसी है। कल्पना का पुट भरने की ज़रूरत शरद सिंह करती हैं लेकिन उसे सच्चाई की धरातल से दूर नहीं करती। सच्चाई चाहे कितनी भी नुकीली क्यों न हो उसे पेश करने का साहस शरद सिंह में है। उनकी हर रचना ईमानदारी का निर्बहन कर के आगे बढती है।

शरद सिंह का व्यक्तित्व

शरद सिंह का जन्म मध्यप्रदेश के एक पिछडे जिले पन्ना में सन् 1963 में हुआ। बचपन से ही इनमें साहित्य रचा–बसा था क्योंकि साहित्य इन्हें विरासत में मिला था । इनकी रुचि साहित्य सृजन से जुडी

हुई थी। इनका रचना संसार इस बात का साक्षी है।

शरद सिंह का कृतित्व इनका रचना लोक व्यापक है। इसमें नाटक कहानी, उपन्यास, निबंध, स्त्री विमर्श, आलोचना शामिल है। अब तक इनके तीन कहानी संग्रह, पांच प्रौढोपयोगी कथा संग्रह, दो काव्य संग्रह तथा दो शोधग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

""आधी दुनिया पुरी धुप इनका नाटक है। इनकी प्रमुख कहानियाँ बाबा फरीद अब नहीं आते, छिपी हुई औरत और अन्य कहानियों, श्रेष्ठ जैन कथाएं, श्रेष्ठ सिक्ख कथाएं और तीली तीली आग हैं।

""खजुराहों की मूर्तिकला के सौन्दर्यात्मक तत्व और न्याययिक विज्ञान की नई चुनौतियां इनके विचारों का सागर है। इसमें इन्होंने अपने विचारों को बडी तकनीकी से पेश किया है।"" इनके प्रमुख उपन्यास पंचकौडी और पिछले पन्ने की औरते हैं। पत्तों में कैद औरतें, स्त्री पर लिखी एक पुस्तक हैं जिसमें स्त्री विमर्श किया गया है।

पिछले पन्ने की औरतें इनका बहुचर्चित उपन्यास है, इसमें उन स्त्रियों का चित्रण है। जो कभी अगले पन्ने पर नही आई। यह उन स्त्रियों की कहानी है जो आज भी अपने पैरों में धुंध डिग्री बांधने और अपनी देह का सौदा करने के लिए विवश हैं। बेडनियों के पिछडे जीवन का चित्रण ही पिछले पन्ने की औरतें नामक उपन्यास में है।

शरद सिंह ने खजुराही की मुर्तिकला पर पी.एच.डी उपाधि प्राप्त करने के साथ ही इन्होंने राष्ट्रीय शैक्षणिक प्रसारण हेतू ए.वी. आर.सी डॉ. हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के अर्न्तगत विविध विषयों पर पटकथा–लेखन एवं फिल्म संपादन भी किया।

पद–पुरस्कार

कहानी संग्रह "तीली–तीली आग पर शरद सिंह को" अंबिका दिव्य रजत अलंकरण" से सम्मनित किया गया। शरद सिंह की साहित्यिक सेवा के लिए इन्हे पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। "तीली तीली आग" पर ही इन्हें पहला पुरस्कार प्राप्त हुआ। उनकी अगली कहानी संग्रह "राख तरे अंगरा" पर इन्हें "कस्तूरी देवी चतुर्वेदी स्मृति लोकभाषा लेखिका" का दूसरा सम्मान प्राप्त हुआ। इनका शोध ग्रंथ न्यायालयिक विज्ञान की चुनौतियों पर ग्रह मंत्रालय, भारत सरकार के राष्ट्रीय "पंडित गोविंद वल्लभ पंत पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इनकी कहानियों के विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी हुए हैं।

निष्कर्ष में कहा जाए तो समकालीन हिन्दी उपन्यासों में कई नए मोड आए लेकिन इन मोडों ने हमें एक अच्छी राह तक पहुँचाने में मदद की। समकालीन उपन्यासों की हर प्रवृत्ति पर लेखक की नज़र होनी चाहिए। शरद सिंह ऐसी ही लेखिका है जिनकी पैनी नज़र ने समकालीन परिदृश्य को परखा और उस पर अपनी कलम चलाई। स्त्री पर उनका दस्तावेज़ी अन्वेषण और स्त्री जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण शरद सिंह को अन्य समकालीन उपन्यासकारों में अक्षुण्ण बना देता है।